International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 01-06-2020; Accepted: 15-06-2020; published: 02-07-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 4; 2020; Page No. 04-06

भारतीय संस्कृति के संरक्षण में शिक्षा की भूमिका

अशोक कुमार
सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ, झारखण्ड़, भारत

सारांश
संस्कृति और शिक्षा का घनिष्ट सम्बन्ध इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य बालक को उसकी सामाजिक विरासत, उसकी संस्कृति प्रदान करना है। प्रत्येक मानव समूह में हजारों सालों के विकास के परिणामस्वरूप संस्कृति के विभिन्न अंगों का विकास होता है। यह संस्कृति प्रत्येक पीढ़ी द्वारा नयी पीढ़ी को सौंप दी जाती है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी संस्कृति में जन्म लेता है। इस सांस्कृति विरासत से उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करने के निश्चित प्रतिमान और प्राप्त करने के मूल्य मिल जाते हैं और उसे हर समय नये सिरे से प्रयोग नहीं करने पड़ते। बालक की संस्कृति शिक्षा सबसे पहले परिवार में प्रारम्भ होती है। परिवार में माता–पिता तथा अन्य सम्बन्धी बालक को संस्कृति के विभिन्न उपकरण जैसे रीति–रिवाजों, परम्पराओं, मूल्यों, विश्वासों आदि की शिक्षा देते हैं। परिवार में ही वह पहले उचित, अनुचित में अन्तर करना सीखता है। पविार में विभिन्न प्रकार के संस्कारों के द्वारा उसको सुसंस्कृत बनाया जाता है। हिन्दू समाज में बालक को सुसंस्कृत बनाने के लिए अनेक प्रकार के संस्कार दिये जाते हैं। अन्य संस्कृतियों में भी इसी प्रकार की व्यवस्था देखी जा सकती हैं। परिवार में ही व्यक्ति नैतिक मूल्यों और धार्मिक व्यवहार के प्रतिमानों को सीखता है। परिवार में उसे शिष्टाचार सिखाया जाता है। परिवार के अन्य सदस्यों की देखा–देखी वह अपने से छोटे–बड़े और बराबर के व्यक्तियों से व्यवहार करने के तरीके सीखता है। प्रत्येक देश की संस्कृति में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले महापुरुषों पर उनके बाल्यकाल में परिवार का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। परिवार में संस्कृति की शिक्षा कुछ तो अचेतन अनुकरण के द्वारा होती है और बहुत कुछ वयस्क सम्बन्धियों द्वारा दी गई प्रत्यक्ष शिक्षा के रूप में होती है।

मूल शब्द: संस्कृति, संरक्षण, शिक्षा

प्रस्तावना
संस्कृति ऐसा बड़ा व्यापक शब्द है जिसका विभिन्न लोग भिन्न–भिन्न प्रकार से अर्थ लगाते हैं। कुछ लोग संस्कृति का अर्थ जीवन के सार्वभौमिक दृष्टिकोण से लगाते हैं, तो कुछ लोग इसका अर्थ रहन–सहन, बोल–चाल आदि से लगाते हैं। कुछ लोग संस्कृति का तात्पर्य सामाजिक परंपराओं और रीति–रिवाजों से लगाते हैं। जीवन को नकली सौदंर्य प्रदान करने को भी कतिपय लोग संस्कृति कहते हैं। संगीत, चित्रकला, वास्तुकला, साहित्य आदि की प्रगति से कुछ लोग संस्कृति का संबंध जोड़ते हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि जो व्यक्ति जितनी ही अधिक भाषाओं का ज्ञान रखता है वह उतना ही अधिक सांस्कृतिक है। रईसाना ढंग से रहना, खूब अच्छा खाना और अच्छे कपड़े पहनने को लोग संस्कृति का नाम देते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृति के प्रति विभिन्न लोगों का विभिन्न दृष्टिकोण है और अपनी–अपनी समझ के अनुसार लोग उसका अलग–अलग अर्थ लगाते हैं। भारतीय संस्कृति रीति–रिवाजों, प्रथाओं और विश्वासों के अनुसरण की एकल या परम्परागत संस्कृति न होकर अनेक प्रथाओं और विविध रूपों के मेलजोल की संस्कृति है। बुजुर्ग लोग व्यक्ति हुआ करते थे।, युवाओं को उनकी बात माननी होती थी, उनसे शिक्षा ग्रहण करते थें, वे परिवार जीवन, माता–पिता–बच्चा संबंध तथा अनुशासन की परम्पराओं और मूल्यों की जानकारी देने वाले अभिकर्त्ता होते थे। वैश्वीकरण संस्कृति के अंधाअनुकरण के कारण भारतीय संस्कृति की विलक्षणता लुप्त होती जा रही है।तथापि गाँव आज भी अतिथेय की भावना, सादगी, शालीनता और ईश्वर में विश्वास रखने संबंधी परम्परागत मूल्यों को जीवित रखे हुए है। यह अलग बात है कि उन्हें आर्थिक एवं प्रौद्योगिकीय विकास से वंचित रखकर आधुनिकता से बाहर कर दिया गया है।

संस्कृति – साधारण बोलचाल में संस्कृति का अर्थ सुन्दर, परिष्कृत, रुचिकर या कल्याणकारी व्यवहार या गुणों से लिया जाता है। संस्कृति एक जटिल सम्पूर्ण है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलायें, नीति, विधि, रीति–रिवाज और समाज के सदस्य होकर मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य योग्यतायें और आदतें शामिल है।

संरक्षण – संरक्षण का अर्थ है संस्कृति, परम्पराओं को जीवित रखना। संस्कृति संरक्षण निरन्तरता को बनाए रखती है। वर्तमान पीढी से आने वाली पीढीयों को हस्तांतरण करती है।

शिक्षा– शिक्षा का अर्थ व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक, व्यक्तिगत तथा सामाजिक विकास करना है।

भारतीय संस्कृतियों के प्रकार
भारत में तीन प्रकार की संस्कृतियाँ हं
1. भारत की प्राचीन संस्कृति (Classical Indian Culture)– हिन्दुओं, की प्राचीन आर्य संस्कृति या वैदिक संस्कृति के आदर्शों, मूल्यों प्रतिमानों, ज्ञान, विचानों, धर्म व आध्यात्मिक तथा सामाजिक सांस्कृतिक विविध विशेषताओं को भारत की गौरवशाली प्राचीन या क्लासिकल संस्कृतिक कहा जाता है।
2. लोक या क्षेत्रीय संस्कृतिया¡ (Folk Cultures)– भारत में कई क्षेत्रों में विभिन्न छोटे–छोटे समुदाय हजारों वर्षों से रहते आ रहे हैं। उनकी अपनी–अपनी लोक–संस्कृतियाँ हैं।
3. जनजातीय संस्कृतियाँ (Tribal Cultures)– भारत में अनके जनजातियाँ हैं जो पहाड़ो, समुद्र के निकट, रेगिस्तानों और वनों में हजारों वर्षों से रह रही हैं। उनकी अपनी–अपनी विशेष संस्कृतियाँ हैं।

संस्कृति का महत्त्व

1. **जीवन यापन की कला सीखने में सहायक–** संस्कृति व्यक्ति के जीवन संघर्षों को कम करती है और उसे वातावरण के प्रति समायोजित होने की क्षमता प्रदान करती है और प्रकार व्यक्ति सुखपूर्वक जीवन यापन करने में सफल होता है।
2. **सामाजिक व्यवहार की दिशा निर्धारित करने में सहायक–** अपनी संस्कृति से परिचित होने से उपरान्त व्यक्ति सामाजिक आदर्शों, मान्यताओं, परम्पराओं, मूल्यों और आदर्शों के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ कर देता है और इस प्रकार वह संस्कृति से सामाजिक व्यवहार करने की दिशा ग्रहण करता है।
3. **व्यक्तित्व निर्माण में सहायक–** बालक जैसे–जैसे बडत्रा होता जाता है– वैसे–वैसे उसके समाज का क्षेत्र व्यापक होता जाता है। वह पहले परिवार फिर पड़ौस, फिर गाँव, नगर, प्रदेश, देश और विश्व के सम्पर्क में आता है सम्पर्क बढ़ने के साथ–साथ उसे विशिष्ट अनुभव प्राप्त होते हैं, जिन्हें वह अपने जीवन का अंग बना लेता है। ये अनुभव उसके व्यक्तित्व पर बहुत गहरा प्रभाव डालते हैं और इस प्रकार उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है।
4. **समाजीकरण में सहायक–** एक समाज की संस्कृति उसके आचार–विचारों, व्यवहारों, मान्यताओं, परम्पराओं और विश्वासों में निहित होती है जो समाजीकरण के भी आधार होते हैं। इस प्रकार संस्कृति व्यक्ति को समाजीकृति करती है।
5. **अनुकूलन करने में सहायक–** भौगोलिक दशायें, समाज की रचना आदि संस्कृति के निर्माण में बहुत योग देते हैं। व्यक्ति अपने सुख के लिए प्रकृति को अपने अनुरूप ढालने का प्रयास करता है और इस प्राकर उसे इस वातावरण से अपने को व्यवस्थित करने में संस्कृति से बहुत सहायता मिलती है।
6. **राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में सहायक–** सांस्कृतिक एकता राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में बहुत सहायक होती है। एक संस्कृति वाले समाज के सदस्य अपनी परम्पराओं, विश्वासों, मूल्यों और आदर्शों आदि पर बहुत आस्था रखते है, उनसे उनका लगाव होता है और वे उनकी रक्षा करने तथा प्रचार और प्रसार करने में संलग्न रहते हैं, इससे राष्ट्रीय एकता को बल मिलता है।

संस्कृति के संरक्षण और विकास के लिये शिक्षा

1. **स्वाभाविक शक्तियों का विकास–** बालक जन्म से ही अनेक प्रकार की स्वाभाविक शक्तियों को लेकर उत्पन्न होता है। शरीर की वृद्धि के साथ–साथ मस्तिष्क की भी वृद्धि होती है, किन्तु जन्मजात शक्तियों के विकास के लिये इतना ही पर्याप्त नहीं है। कहा जाता है कि यदि मस्तिष्क को इस्तेमाल न किया जाये तो उसकी शक्तियों का विकास नहीं हो सकता। अस्तु, शिक्षा का सबसे पहला काम भिन्न–भिन्न प्रकार की उत्तेजनायें और अवसर उपस्थित करके बालक की विभिन्न जन्मजात शक्तियों जैसे–कल्पना शक्ति, चिन्तन शक्ति आदि का समुचित विकास करना है।
2. **चरित्र–निर्माण**– मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य के चरित्र की नींव उसके जीवन के प्रथम कुछ वर्षों में ही पड़ जाती है। शैशवावस्था में बालक के मन पर आचार–व्यवहार के विषय में जो संस्कार पड़ जाते हैं, वे ही आगे चलकर उसके चरित्र के रूप में अभिव्यक्त होते हैं।
3. **व्यक्तित्व का विकास**– बालक के व्यक्तित्व के विकास पर सबसे पहला और स्थायी प्रभाव उसके परिवार का होता है। परिवार में जन्म–क्रम, भाई–बहनों में बालक का स्थान, परिवार की आर्थिक और सामाजिक स्थिति, बालक के प्रति माता–पिता का व्यवहार, माता–पिता का परस्पर व्यवहार, माता–पिता के व्यवसाय आदि अनेक बातों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। कहा जाता है कि महापुरूषों के व्यक्ति के निर्माण में उनके माता–पिता की शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है।
4. **व्यवस्क जीवन की तैयारी–** शिक्षा का एक उद्देश्य जीविकोपार्जन माना गया है। आधुनिक काल में आर्थिक परिस्थितियाँ इतनी जटिल हो गयी हैं कि समुचित शिक्षा के बिना कोई भी व्यक्ति जीविकोपार्जन का कार्य भली प्रकार से नहीं कर सकता। पहले जब कृषि प्रधान देशों में कार्यों का इतना विशिष्टीकरण नहीं हुआ था तो वयस्क जीवन के लिये शिक्षा का इतनी अधिक आवश्यकता नहीं होती थी, किन्तु आज विभिन्न आर्थिक कार्यों का विशिष्टीकरण और विज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति के कारण बिना शिक्षा के कोई भी व्यक्ति किसी भी काम को कुशलतापूर्वक नहीं कर सकता, बल्कि साधारणतया ऊँची नौकरियाँ प्राप्त करने के लिये ऊँची शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य होता ळें
5. **सामुदायिक भावना का विकास–** मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसका एक विशेष अर्थ यह है कि वह समाज में ही रहता है। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि मानव शिशु में जन्म से ही सामाजिक गुण पाए जाते हैं। ये सामाजिक गुण उसे सिखाये जाते हैं। अस्तु, शिक्षा का एक मुख्य कार्य बालक–बालिकाओं में सामुदायिक भावना का विकास है।
6. **संस्कृति और सभ्यता का संरक्षण और वृद्धि**– अन्य पशुओं की तुलना में मनुष्य की प्रगति का एक मुख्य कारण यह है कि मानव समाज में सभ्यता और संस्कृति के रूप में ज्ञान और अनुभव का संचय किया गया है। वर्तमान काल में जन्म लेने वाला बालक हर दिशा में नये सिरे से नहीं सोचता। उसके सोचने–विचारने के ढंग और काम करने के तरीके, रीति–रिवाजों, परम्पराओं और सामाजिक संस्थाओं के रूप में संचित पूर्वजों के हजारों वर्षों के अनुभव से निर्देशित होते हैं। इसीलिये जिन देशों में संस्कृति जितनी ही अधिक प्राचीन होती है, उनमें मानव जीवन में उतनी ही अधिक व्यवस्था, उतनी ही अधिक स्थायित्व दिखलाई पड़ता है।
7. **राष्ट्रीय भावना का विकास**– मानव समाज के विकास के लिये विभिन्न राष्ट्र समूहों का सर्वांगीण विकास आवश्यक है और यह शिक्षा के समुचित प्रसार के बिना नहीं हो सकता। इसलिये आजकल संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से पिछड़े हुए देशों में शिक्षा की प्रगति के विशेष प्रयास किये जाते है। प्रत्येक देश में राष्ट्रीय भावना का विकास किया जाता है। इससे देशवासी राष्ट्र की प्रगति में सब प्रकार से योगदान देते हैं।
8. **अन्तर्सांस्कृतिक अवबोध बढ़ाना**– जिन देशों में अनेक सांस्कृतिक समूह पाये जाते हैं, वहाँ शिक्षा अन्तर्सांस्कृतिक अवबोध बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। इससे विभिन्न संस्कृतियों के अनुयायियों को एक–दूसरे को समझने में सहायता मिलती है और राष्ट्रीय एकता बढ़ती है। आज संसार में अनेक संस्कृतियाँ पायी जाती हैं। जब तक शिक्षा के द्वारा इनके अनुयायियों में परस्पर मेल–जोल और सदभावना उत्पन्न नहीं की जाती, तब तक विश्व ऐक्य का आदर्श पूरा नहीं हो सकता।
9. **भावात्मक एकता बढ़ाना**– आधुनिक काल में देश में क्षेत्रवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद आदि संकीर्ण प्रवृत्तियों के कारण विघटनकारी शक्तियाँ कार्य कर रही हैं। देश को इस विघटन से बचाने के लिये नर–नारियों में भावात्मक एकता उत्पन्न करना आवश्यक है, जिससे लोग अपने को एक ही राष्ट्र के सदस्य मानें और राष्ट्र–हित को ध्यान में रखकर कार्य करें और भावात्मक एकता के विकास का यह कार्य शिक्षा के द्वारा सम्पन्न हो सकता है। इस विषय में अनेक

शिक्षाशास्त्रियों ने महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं।

10. **राष्ट्रीय भाषा का विकास**– यद्यपि किसी भी देश में अनेक भाषाओं का बोला जाना और विकसित होना राष्ट्रीय एकता में किसी भी प्रकार से बाधक नहीं है, किन्तु एक सामान्य राष्ट्रीय भाषा का विकास किये बिना राष्ट्रीय एकता स्थापित करना काफी कठिन है, क्योंकि भाषा ही संवेगों और विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम है। जिस प्रकार विचारों और भावों का घनिष्ठ सम्बन्ध है, उसी प्रकार राष्ट्रीय और भाषा परस्पर सम्बन्धित है।
11. **कर्त्तव्यों की चेतना**– किसी भी राष्ट्र की प्रगति के लिये उसके सदस्यों में राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्यों की चेतना आवश्यक है। यह कार्य शिक्षा द्वारा सम्पन्न किया जाता है। विद्यालयों में शिक्षार्थियों को राष्ट्र के सदस्य होने के रूप में उनके अधिकारों और कर्तव्यों से परिचित कराया जाता है, उनमें कर्त्तव्यों की चेतना उत्पन्न की जाती है और उन्हें यह बतलाया जाता है कि वे इन कर्तव्यों को किस प्रकार निभा सकते हैं। जनतन्त्र में शिक्षा का यह कार्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

शिक्षा का संस्कृति पर प्रभाव

1. **शिक्षा संस्कृति का संरक्षण करती है**– हुमायूं कबीर के अनुसार, ''सांस्कृतिक परम्परा ही एक जाति के जीवित रहने की आवश्यक शर्त है।'' शिक्षा के माध्यम से ही किसी समाज की संस्कृति सुरक्षित रहती है, जीवन रहती है। किसी समाज की संस्कृति युग–युग की साधना का परिणाम होती है इसलिए उस समाज का उससे लगाव होता है और वह उसे सुरक्षित रखना चाहता है और यह कार्य शिक्षा के द्वारा किया जाता है। औपचारिक, अनौपचारिक या निरोपचारिक साधनों के द्वारा। शिक्षा संस्कृति की निरन्तरता को बनाये रखती है। वर्तमान पीढ़ी का अपनी संस्कृति की जानकारी शिक्षक के द्वारा ही होती है।
2. **शिक्षा संस्कृति का हस्तान्तरण करती है**– ओटावे के अनुसार, ''शिक्षा का एक कार्य समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों को उसके तरूण और समर्थ सदस्यों को हस्तान्तरित करना है।'' शिक्षा संस्कृति का केवल संरक्षण ही नहीं करती अपितु नयी पीढ़ी में उसका हस्तान्तरण भी करती है। शिक्षा के कारण ही संस्कृति अपने अस्तित्व को बनाये रखती है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संस्कृति का हस्तान्तरण करके शिक्षा संस्कृति को अमरत्व प्रदान करती है।
3. **शिक्षा संस्कृति का विकास करती है**– शिक्षा का कार्य केवल संस्कृति का संरक्षण और हस्तान्तरण करना ही नहीं है वरन् उसका विकास करना भी है। यदि शिक्षा केवल संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करती रहेगी तो उसका विकास कैसे होगा? यद्यपि प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति को उसी रूप में सुरक्षित रखना चाहता है जिस रूप में वह उसे प्राप्त करता है, परन्तु समाज में निरन्तर परिवर्तन होते रहते है। युग और काल के अनुसार, ''संस्कृति का विकास करना और उसको उपयोगी बनाना शिक्षा का ही उत्तरदायित्व है।''
4. **शिक्षा संस्कृति का परिमार्जन करती है**– समय के साथ–साथ संस्कृति के अनेक तत्व अनुपयोगी और निरर्थक हो जाते हैं और अपनी उपयोगिता खो देते हैं। इसके अतिरिक्त अशिक्षा, व्यक्तिगत स्वार्थ और अन्धविश्वासों आदि के कारण संस्कृति में अनके बुराईयाँ पैदा हो जाती हैं। शिक्षा संस्कृति के इन अनुपयोगी ओर निरर्थक तत्वों तथा उसमें पैदा हुयी बुराइयों का निष्क्रमण कर संस्कृति को परिमार्जित करती है और उसके रूप को निखार कर उसे उपयोगी बनाती है।
5. **शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में सहायता करती है**– शिक्षा संस्कृति के अनुकूल बालक के व्यक्तित्व का विकास करती है। शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न अंगो–बौद्धिक, नैतिक, चारित्रिक आदि–के विकास के लिए सांस्कृतिक उपकरणों को प्रयोग में लाती है और नित–नवीन उपकरणों की रचना करती है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास किया जाता है और ऐसे व्यक्तित्व समाज की संस्कृति को उन्नत करते हैं। इस प्रकार इस रूप से शिक्षा समाज की संस्कृति को विकसित भी करती है।

निष्कर्ष

आजकल अन्य कार्यों के समान संस्कृति की शिक्षा देने का कार्य भी परिवार से अधिक विद्यालय में ही होता है। भिन्न–भिन्न देशों में विद्यालयों में देश की संस्कृति के अनुरूप बालकों को शिक्षा दी जाती है। पाठ्य–पुस्तकों के माध्यम से उनको समूह के विचारों, आदर्शों और मूल्यों आदि से परिचित कराया जाता है। विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमेतर कार्यक्रमों के द्वारा उन्हें संस्कृति के विभिन्न अंगों की शिक्षा दी जाती है। इन पाठ्यक्रमेतर कार्यक्रमों में नाना प्रकार के खेलों, नाटकों, सामूहिक गान और नृत्य, वाद–विवाद प्रतियोगिताओं, देश–विदेश का भ्रमण आदि के द्वारा बालकों को समूह की संस्कृति से परिचित कराया जाता है। यूँ तो प्रत्येक समाज में परिवार और विद्यालय नई पीढ़ी को समाज की सामान्य संस्कृति सिखाते हैं, किन्तु किसी भी समाज में विभिन्न वर्गों और स्तरों के व्यक्तियों की संस्कृति में न्यूनाधिकार अन्तर देखा जाता है। अरस्तु, बालक को न केवल समाज की सामान्य संस्कृति, बल्कि उसके विशेष वर्ग और सामाजिक–आर्थिक स्तर की विशेष संस्कृति की भी शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार संस्कृति की शिक्षा में बृहद् संस्कृति की शिक्षा के साथ–साथ उपसंस्कृतियों की शिक्षा भी आवश्यक होती है। संस्कृति की शिक्षा से व्यक्ति को अपने प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश से समायोजन करने में सहायता मिलती है। इससे बालक का सामाजिक व्यक्तित्व निर्माण होता है और वह दूसरों से व्यवहार करना सीखता है। इससे उसे जीविकोपार्जन करने तथा जीवन में आवश्यक अन्य कार्यों में भी महत्त्वपूर्ण सहायता मिलती है। इससे वह सामाजिक संस्थाओं को अपनाता है और उनके अनुरूप व्यवहार करता है। इससे उसे जीवन में प्रत्येक अवसर पर व्यवहार के स्पष्ट प्रतिमान मिल जाते हैं। इससे वह समाज का उत्तरदायी सदस्य बनता है।

सन्दर्भ सूची

1. गुप्ता, एस0पी0 एवं गुप्ता, अल्का (2009). शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन,
2. त्यागी, गुरसरनदास (2020), आधुनिक भारत एवं शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2
3. पचौरी, गिरीश (2006), शिक्षा के सामाजिक आधार, आर0 लाल0 बुक डिपो
4. पाठक, पी0डी0 (2008), शिक्षा मनोविज्ञान, विकास की अवस्थाएँ, आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन्स,
5. पाठक, पी0डी0 (2012), शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
6. पाठक, पी0डी0 (2020), बाल्यावस्था एवं बड़ा होना, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2
7. रुहेला, एस. पी. (2005), विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2
8. सक्सेना, एन0 आर0 स्वरूप, (2010) शिक्षा क दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, आर0 लाल0 बुक डिपो